ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 11, November 2016

आधुनिक बोध और धर्मवीर भारती का अंधायुग

Devendra Kumar Gupta

Assistant Professor, Hindi, Government College, Dholpur, Rajasthan, India

सार

'अंधायुग' द्वारा भारती जी ने विश्वव्यापी संत्रास, कुंठा, प्रतिहिंसा और प्रतिशोध में जल रहे पात्रों के माध्यम से जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत किया हैं । **भारती जी ने अतीत के माध्यम से वर्तमान का यथार्थ तथा आधुनिकता बोध को एक साथ दर्शाया हैं** | युद्ध की समस्या पूरे विश्व की समस्या हैं। धर्मवीर भारती का " अंधा युग" नयी कविता की प्रतिनिधि रचना है । यह रचना नयी-कविता की काव्य संवेदना, शिल्पगत नवीनता और भाषा सौष्टव की स्वायत्तता की परिचायक भी है । अंधा युग का रचना काल सन् 1954 ई. में हैं । कवि ने महाभारत के युद्ध का आश्रय लेकर महाभारत कालीन आत्म पीडन, अविश्वास अनास्था, विघटन, गिरते मानवीय मूल्यों और नैतिक मानदण्डों की पृष्ट भूमि में युगीन निराशा, अनास्था, विसंगति, प्रतिहिंसा का चित्रण किया है । विशेषतः युगीन मूल्यों के संघर्ष और विघटन के प्रश्नों को बौद्धक धरातल पर गहनता से प्रस्तुत किया है । " अंधा युग" भारती की सर्जनात्मक और आधुनिक संवेदना का निरुपक काव्य नाटक है । इस में आया प्रबन्धन जिस शिल्प में ढ़लकर आया है वह ऐसा नहीं है जिसे परम्परा की आवृत्ति मात्र मानकर छोड दिया जाए । यह वह काव्य नाटयात्मक प्रबन्ध है जिस में महाभारतीय संदर्भों के शिलापट्ट पर आधुनिक संवेदना का आस्थामय आलोक विकीरित हुआ है । ऐसी स्थिति में " अंधायुग" मात्र किसी अन्धेयुग की कथा नहीं है, अपितु अंधत्व के सहारे आस्थापूरित आलोक की ओर ले जानेवाली वह कृति है जिस में परस्पर पीठिका भर है और उसके सहारे अभिव्यक्त संदर्भ-संवेदनायें नवीन और युग सापेक्ष हैं । अतः इस कृति में जो आस्था भावना अनुगुंजित है । उसके सही विश्लेषण के लिए आधुनिक संवेदना अपरिहार्य हैं । मध्यकालीन प्रवृत्तियों से जन्मी आस्थाएं, मान्यताएं, और संवेदनायें लुप्त प्राय हैं । इसका कारण यह है कि वैज्ञानिक दृष्टि और उससे युक्त आस्थाएं सिर उठा रही हैं और वैज्ञानिक जागरुकता के कारण बौद्धिक प्रचण्डता बढ़ रही है । धर्म लाँछित होकर अधर्म को मूल्य मानने की प्रेरणा दे रहा है और नैतिक दाय परिवर्तित दृष्टि के तेज के कारण नये अनुभव क्षेत्रों और मूलाधारों को विकसित कर रहा है। स्पष्ट है कि सारे संसार में धर्मानुमोदिता आस्था नष्ट हो गयी है और नये मानवीय मूल्यों की प्रतिष्टा जोर पकड रही है और जब प्राचीन मूल्यों को नये मूल्यों की कसौटी पर चढ़ना पडता है तब जो संकट व क्षण उपस्थित होता है । वही आधुनिक संवेदनओं को उजागर करता है । " अंधा युग" की कथा इसी बिन्दु पर आकर अतीत के गोलक से छिटककर वर्तमान की जलधारा में आ मिलती है । " अंधा युग" में भारती ने महाभारत के उत्तरार्द्ध की कथा को आधार बनाकर समकालीन बोध को वाणी दी है । इस प्रबन्ध की कथा का घटनाकाल महाभारत के अठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभास तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक फैला हुआ है । "अंधा युग" के स्थापना भाग में स्वयं भारती ने यह स्वीकार किया है कि इस काव्य की कथा आधुनिक युग की है किन्तु इस कथा को कहने का माध्यम अतीत है । इतना ही नहीं भारती ने गीता में प्रतिपादित अनासक्त जीवन दर्शन को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया है । "अंधा युग" की कथा-वस्तु में पर्याप्त आधुनिकता है । कथा वस्तु में आई घटनाएं किसी-न-किसी रुप में आधुनिक मूल्यों, मान्यताओं और जीवन दृष्टि को व्यंजित करती हैं । धर्मवीर भारती ने इस काव्य-नाटक में कथा के माध्यम से अनेक आधुनिक समस्याओं और प्रश्नों को उठाया है । कुछ ऐसे प्रश्न और कुछ ऐसी समस्याएं भी कथा में आ गयी हैं जो आधुनिक बोध को वाणी देती हैं । इस में कोई सन्देह नहीं की अंधायुग आधुनिक भाव-बोध को प्रस्तुत करता है । भारती ने आधुनिक जीवन मूल्यों के विघटन,संक्रमण, क्षोभ और अनेकानेक संत्रस्त विसंगतियों को विविध संदर्भों में अभिव्यक्त किया है ।

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 11, November 2016

परिचय

धर्मवीर भारती ने " अंधा युग" में जिस आधुनिक बोध को वाणी दी है, वह चरित्रों के व्यक्तित्व विश्लेषण के द्वारा भी स्पष्ट होता है । यद्यपि अंधा युग के अधिकांश पात्र प्रख्यात हैं किन्तु प्रख्यात प्रात्रों के व्यक्तित्व विश्लेषण और अन्तर्द्वन्द्व को प्रस्तुत करते हुए आधुनिक बोध अभिव्यक्ति पा ही गया है । वृद्ध याचक और गूँगा भिखारी कल्पित पात्र होते हुए भी आभिव्यक्त संवेदना को उजागर करते हैं । अंधा युग के "अश्वत्थामा" को केन्द्रीय चरित्र माना जा सकता है । भारती ने उसकी प्रस्तुति में पर्याप्त आधुनिकता से काम लिया है । रचनाकार ने सम-सामयिक दायित्वबोध को स्वीकारते हुए उसे विशिष्ट रुप में प्रस्तुत किया है । उसका चरित्र पर्याप्त मनोवैज्ञानिक बन गया है । कृतिकार ने अश्वत्थामा के चरित्र निरुपण में सजगता से काम लिया है और इसी कारण उसका नैराश्य पूर्ण और मनोग्रन्थियुक्त व्यक्तित्व प्रस्तुत काव्य नाटक की प्रमुख घटनाओं से पूरी तरह जुडा हुआ लगता हैं । [1]अश्वत्थामा सही अर्थों में आधुनिक मानवता का प्रतीक है ।

भारती ने अंधा युग में महाभारत के अठारहवें दिन के बाद की युद्धोत्तर घटनाओं का सहारा लेकर जो कथा वृत्त प्रस्तुत किया है, वह आधुनिक जीवन के पर्याप्त निकट है । न केवल कथानक अपितु उससे निकलनेवाले संकेत तथा पात्र एवं उनका आचरण आधुनिक परिवेश के निकट हैं बल्कि वातावरण की प्रस्तुति में भी पर्याप्त आधुनिकता है । अंधा युग में प्राचीन कथा और पौराणिक पात्रों के माध्यम से आधुनिक संवेदनाओं को अभिव्यक्ति दी गयी है । उन्होंने पुराण कथा के द्वारा संकट बोध को अभिव्यक्ति देने के लिए इतिहास की पीठ पर वर्तमान को बोझ बनाकर नहीं रखा है । अंधा युग की कथा का हर बिन्दु, हर सन्दर्भ, वर्तमान युग की समस्याओं और स्थितियों को संकेतित करता है । पुरानी कथा में वर्तमान परिवेश की तीखी और यथार्थ चेतना के समावेश से अंधा युग न केवल मूल्यवान बन गया है अपितु एक सार्थक काव्य-नाटक भी हो गया है ।

धर्मवीर भारती का जन्म 25 दिसंबर 1926 को को इलाहबाद के अतरसुइया मुहल्ले में एक कायस्त परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री चिरंजीव लाल वर्मा और माँ का नाम श्री चंदा देवी था। वे आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख लेखक, कवि, नाटककार और सामाजिक विचारक थे। इनके व्यक्तित्व और प्रारम्भिक रचनाओं पर पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी के उच्छल और मानसिक स्वच्छंद काव्य संस्कारों का काफ़ी प्रभाव था। इनका पहला काव्य-संग्रह 'ठंडा लोहा' और पहली उपन्यास 'गुनाहों का देवता' अत्यंत लोकप्रिय हुआ। इसके अतिरिक्त उनका एक और कविता-संग्रह 'सात गीत वर्ष' भी प्रकाशित हुआ। लम्बी कविता के क्षेत्र में राधा के चरित्र को लेकर 'कनुप्रिया' नामक उनकी कविता अत्यंत प्रसिद्ध हुई। इन्होंने प्रयाग विश्वविधालय में अध्यापन के दौरान 'हिंदी साहित्य कोश' के सम्पादन में सहयोग दिया। इन्होंने 'निकष' पत्रिका निकाली तथा 'आलोचना' पत्रिका का सम्पादन भी किया। उसके बाद वे प्रख्यात साप्ताहिक पत्रिका 'धर्मयुग' के संपादक पद को संभालने लगे।[2]

- धर्मवीर भारती का काव्य नाटक अंधा युग भारतीय रंग मंच का एक महत्वपूर्ण नाटक है।
- धर्मवीर भारती 'द्वितीय सप्तक' के कवि थे।
- 'अँधा युग' नाटक का रचनाकाल 1954 ई० है। यह पाँच अंकों का गीतिनाट्य है।
- अंधा युग का पहली बार प्रसारण 'आकाशवाणी' पर हुआ था।
- यह नाटक 'वक्ता' और 'श्रोता' की कथा शैली में लिखा गया है।
- इस नाटक में सशक्त 'बिम्ब' योजना और मुक्त 'छंदों' की प्रधानता है।
- जयशंकर प्रसाद जी का 'करुणालय', धर्मवीर भारती' जी का 'अंधायुग' और 'नीली झील' ये लोकप्रिय गीतिनाट्य है।
- इस नाटक की कथावस्तु महाभारत से ली गई है। महाभारत में 18 पर्व और 100 उप-पर्व है। इसमें पहला पर्व 'आदिपर्व' और 18वाँ पर्व 'स्वर्गारोहणपर्व' है।
- इस नाटक में महाभारत के अट्ठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभास-तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक का वर्णन है।

नाटक में धर्मवीर भारती जी ने पौराणिक कथा के माध्यम से आधुनिक भाव बोध का रूपान्तरण किया है। आज के विघटित मानव मूल्यों की समस्या को नाटक में प्रमुखता से स्थान दिया है। नाटककार ने युद्ध की समस्या और उसके विध्वंशकारी परिणाम, भाई-भतीजावाद, धर्म-अधर्म आदर्श-यथार्थ आदि जीवन सत्यों को मुखरित किया है।

नाटक के आरम्भ में ही धर्मवीर भारती जी ने स्वयं कहा है:

युध्दोंपरांत,
यह अँधा युग अवतरित हुआ,
जिसमे स्थितियाँ, मनोवृतियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं
है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की
पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षों में
सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का
वह है भविष्य का रक्षक, वह है अनासक्त
पर शेष अधिकतर हैं अंधे
पथभ्रष्ट, आत्महारा, विगलित
अपने अंदर की अन्धगुफाओं के वासी
यह कथा उन्ही आधों की है;
या कथा ज्योति की है अंधों के माध्यम से

डॉ० नागेंद्र जी ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में लिखा है- "इस कथा को चुनने का मूल प्रयोजन युद्ध जन्य वर्तमानकालीनता को प्रासंगिकता देना है। किंतु इसकी उपलब्धि केवल वर्तमानता के कारण नहीं है, बल्कि जब-जब युद्ध होगा ऐसी ही अवसादपूर्ण त्रासद स्थितियाँ उत्पन्न होंगी और विघटित मूल्यों के सन्दर्भ में मनुष्य को नए मूल्यों की तलाश करनी होगी।"

प्रो० वासुदेव सिंह ने 'हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास' में लिखा है- "लेखक ने महाभारत के कथानक के आधार पर युद्ध से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण किया है।"

डॉ० नगेंद्र के शब्दों में- "अँधा युग एक सशक्त आधुनिक त्रासदी है; और प्रभु के मृत्यु के बाद तो त्रासद परिवेश और गहरा हो जाता है। वस्तुतः यह तनावों का नाटक है, संघर्ष का नहीं; और नाटकीयता तनावों में ही होती है।"

'अँधा युग' नाटक की कथावस्तु पाँच भागों में विभाजित है और रचित कृति आठ भागों में रचित है जिसके बीच में अंतराल है।[3]

अंकों का विवरण और स्थान

इस नाटक में पांच अंक और आठ भाग हैं। स्थापना, अंतराल और समापन ये तीनों अंक नहीं है।

1. **स्थापना (अंधा युग)**
2. **प्रथम अंक (कौरवी नगरी)**
3. **दूसरा अंक (पशु का उदय)**
4. **तीसरा अंक (अश्वस्थामा का अर्धसत्य)**
5. **अंतराल (पंख, पहिया और पट्टियाँ)**

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 11, November 2016

6. चौथा अंक (गांधारी का शाप)
7. पंचम अंक (विजय एक क्रमिक आत्महत्या)
8. समापन (प्रभु की मृत्यु)

नाटक के पात्र: नाटक में कुल सोलह (16) पात्र हैं। जिसमे पन्द्रह पुरुष पात्र और एक स्त्री पात्र है।
अश्वस्थामा: गुरु द्रोणाचार्य का पुत्र, दुर्योधन का मित्र, कृष्ण से शत्रुता का संबंध।
कृष्ण: पौराणिक कथा से भिन्न मानवीय रूप में चित्रण, नाटक का केंद्रीय नायक।
गांधारी: धृतराष्ट्र की पत्नी और कौरवों की माँ
धृतराष्ट्र: जन्म के अंधे हैं। पुत्र मोह के कारण सत्ता को अविवेकी पुत्र को सौपना चाहते हैं। एक पुत्र मोह में अंधा पिता।
कृतवर्मा: कृतवर्मा युद्ध के बाद भी जीवित रहते हैं। कौरवों के तरफ से लड़ने वाला एक महारथी।
संजय: व्यास द्वारा दिव्यदृष्टि प्राप्त करके महाभारत युद्ध का आँखों देखा वृतांत धृतराष्ट्र को सुनाते हैं।
वृद्ध याचक: (ज्योतिष) काल्पनिक पात्र है कौरव की विजय की भविष्यवाणी करना कृष्ण के आने के कारण भविष्यवाणी झूठा हो जाना और अश्वस्थामा द्वारा मृत्यु प्राप्त होना।
प्रहरी-1: काल्पनिका पात्र
प्रहरी-2 काल्पनिक पात्र
व्यास: मुनिवर जिन्होंने संजय को दिव्यदृष्टि दिया था।
विदुर: गांधीवादी पात्र, कृष्ण भक्त, कुशल राजनीतिज्ञ।
युधिष्ठिर: पाण्डवों में सबसे बड़े भ्राता धर्मराज के नाम से जाना जाता है।
कृपाचार्य: राजगुरु
युयुत्सु: धृतराष्ट्र का अंतिम (101) पुत्र जो पांडाओं के तरफ से युद्ध लड़ता है और वह युद्ध में बच जाता है।
गूंगा भिखारी: (एक घायल सिपाही, जो युद्ध में बच जाता है और गूंगा हो जाता है)
बलराम: कृष्ण के बड़े भाई जो कौरव के तरफ से युद्ध करते हैं।[4]
अन्धा युग का विषय-वस्तु:

'अँधा युग' नाटक में धर्मवीर भारती ने पौराणिक कथा के माध्यम से आधुनिक भावबोध को स्थापित किया है।

इस नाटक में अमर्यादित और अनैतिक आचरण का विरोध दिखाई देता है। इस संबंध में विदुर ने एक जगह कहा है। विदूर- **"मर्यादा मत तोड़ों तोड़ी हुई मर्यादा कुचले हुए अजगर सी गुन्जालिका में कौरव-वंश को लपेट कर सुखी लकड़ी-सा तोड़ डालेगी।"**

इस नाटक में कर्मयोग का संदेश दिखाई देता है। एक वृद्ध याचक कहता है- **"जब कोई भी मनुष्य अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है।"**

इस नाटक में युद्ध की विभीषिका का चित्रण दिखाई देता है। इसमें युधिष्ठिर के नजर में विजय तिल-तिल कर फलीभूत होने वाला आत्मघात है। युधिष्ठिर कहते हैं- **"विजय क्या है? एक लम्बा और धीमा और तिल-तिल कर फलीभूत होने वाला आत्मघात है।"**

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 11, November 2016

इस नाटक में युद्ध के उपरांत होने वाले विनाशकारी प्रभाव का चित्रण किया गया है। कवि ने विनाश के माध्यम से सृजन को रेखांकित किया है, वे कहते हैं,नाटककार- **"यह कथा उन्हीं अंधों की है, या काठ ज्योति की अंधों के माध्यम से।"**

इस नाटक में मानवीय त्रासदी का वर्णन है। इस नाटक में कहा गया है – **"उस दिन जो अँधा युग अवतरित हुआ जग पर बीतता नहीं रह-रहकर दोहराता है हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कहीं न कहीं हर क्षण अंधियारा गहरा होता है।"**

इस नाटक में कर्म और अस्तित्व के सिद्धांत का समावेश भी दिखाया गया है। इस नाटक में संजय निष्क्रियता का अनुभव करते हुए कहते हैं – **"मैं तो निष्क्रिय होता जाता हूँ क्रमशः अर्थ अपने अस्तित्व का।"**

विचार-विमर्श

प्रथम अंक- कौरव नगरी

इस अंक के आरम्भ में कथा गायन के रूप में महाभारत के युद्ध में कौरव और पाण्डव के द्वारा किये गए अमर्यादित आचरण और व्यवहार का उल्लेख किया गया है। युद्ध के अंतिम दिन और संध्या का समय है। दो प्रहरी कौरव के महलों में घूमते हुए राज्य-नाश और कुल नाश का बोध करते हुए बातचीत कर रहे हैं। अचानक इन्हें कुरुक्षेत्र की दिशा में असंख्य उड़ते हुए गिद्धों का समूह दिखाई देता है, जो अपशगुन सूचक का प्रतीत होता है। उसी समय विदूर प्रवेश करते हैं। वे घटनाओं की जानकारी के लिए संजय की प्रतीक्षा करते हैं। विदूर अन्तःपुर में गांधारी और धृतराष्ट्र के पास पहुँचकर कौरवों के द्वारा किये गए अमर्यादित और अनैतिक आचरण के लिए धृतराष्ट्र का ध्यान आकृष्ट करते हैं। तब धृतराष्ट्र पहली बार यह स्वीकार करते हैं कि जन्मांध होने के कारण वे मर्यादाओं का पालन करने में असफल रहे हैं। विदूर उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि उनका ज्ञान व्यक्तिनिष्ठ नहीं होकर भगवान कृष्ण के प्रति अर्पित होता तो किसी भी प्रकार की आशंका नहीं रहती। यह सब सुनकर गांधारी आवेश में आकर कृष्ण को धोखेबाज और मर्यादा का हत्यारा घोषित करती है। इसी बीच जयकार करता हुआ वृद्ध याचक प्रवेश करता है। यह वही ज्योतिषी है, जिसने बहुत पहले कौरवों के विजयी होने की भविष्यवाणी की थी। [5]भविष्यवाणी के गलत होने का कारण वह कृष्ण को मानता है। जिन्होंने अपने अनाशक्त कर्म से नक्षत्रों की गति को मोड़ दिया। इस अंक के अंत में दोनों प्रहरी के कथागायन में कौरव नगरी के सूनेपन को दर्शाया गया है।

दूसरा अंक- पशु का उदय

इस अंक में संजय कृतवर्मा को अर्जुन द्वारा किये गए कौरवों के विनाश का समाचार सुनाता है। संजय कृतवर्मा को भीम के साथ हुए गदा युद्ध में दुर्योधन के घायल होने की सूचना देता है। उसी समय टूटे हुए धनुष को लेकर अश्वस्थामा प्रवेश करता है। वह पाण्डवों द्वारा छलपूर्वक किए गए पिता द्रोणाचार्य के वध से विक्षुप्त होने के कारण पाण्डवों के वध की प्रतिज्ञा करता है। तभी वन मार्ग से आता हुआ संजय दिखाई पड़ता है। और वह उसका गला दबोच देता है। तभी कृपाचार्य और कृतवर्मा लपककर संजय को अश्वस्थामा से मुक्त कराते है। इसी समय अश्वस्थामा को कौरव नगरी से लौटता हुआ भविष्य वक्ता याचक दिखाई पड़ता है, जिसका अश्वस्थामा तत्काल वध कर देता है। अश्वस्थामा और कृतवर्मा को सोने का आदेश देकर कृपाचार्य स्वयं पहरा देने लगते हैं।

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 11, November 2016

तीसरा अंक- अश्वस्थामा का अर्धसत्य

'कथागायन' के माध्यम से युद्धक्षेत्र से लौटती हुई कौरव दल का उल्लेख किया जाता है, जिसमे केवल बूढ़े घायल और बौने ही शेष रह गए थे। हारी हुई घायल सेना के साथ आये युयुत्सु को देखकर नगरवासी भयभीत हो जाते हैं। युयुत्सु पाण्डव-पक्ष की ओर से लड़ने के कारण आत्मग्लानी से ग्रस्त दिखाई देता है। तभी गांधारी युयुत्सु पर कठोर व्यंग्य करती है। उसी समय संजय गदा युद्ध में दुर्योधन की पराजय का समाचार लाते हैं। अश्वस्थामा कृपाचार्य को बताता है कि भीम ने गदा युद्ध में अधर्मपूर्वक दुर्योधन की जंघा पर प्रहारकिया जो गदा युद्ध के नियमों के विरुद्ध है। वह आवेश में आकर पाण्डवों के वध की प्रतिज्ञा करता है। कृपाचार्य अश्वस्थामा को कौरव दल के सेनापति पद पर नियुक्त करते हैं। कृतवर्मा और कृपाचार्य को सोने का आदेश देकर सेनापति अश्वस्थामा स्वयं पहरा देने लगता है। तभी रात्रि के सन्नाटे में उसे वृक्ष पर एक उल्लू दिखाई पड़ता है जो सोये हुए कौवे पर आक्रमण करता है तथा उसका वध करके नाचने लगता है। इस प्रसंग से प्रेरित होकर अश्वस्थामा पाण्डवोंके वध की योजना मन में लेकर पाण्डव शिविर की ओर प्रस्थान करता है।[6]

अंतराल: पंख, पहिये और पट्टियाँ

नाटक में तीसरे अंक के बाद अंतराल है 'पंख, पहिये और पट्टियाँ' यहाँ अस्वस्थामा के द्वारा मारे गए वृद्ध याचक की प्रेतात्मा प्रवेश करती है। युयुत्सु, संजय, विदूर आदि पात्र प्रेतात्मा के पीछे खड़े होकर अपनी-अपनी आतंरिक असंगति से उत्पन्न पीड़ा को व्यक्त करने लगते हैं। पाण्डव शिविर के द्वार पर एक विशालकाय दानव पुरुष के रूप में महादेव शिव अश्वस्थामा को शिविर में प्रवेश करने से रोकते दिखलाई देते हैं।

चौथा अंक- गांधारी का शाप

इस अंक में आशुतोष महादेव अश्वस्थामा से प्रसन्न होकर उसे पाण्डव शिविर में प्रवेश करने की अनुमति देते हैं। कृपाचार्य के मुख से अश्वस्थामा द्वारा की गई पाण्डवों की विनाश लीला का वर्णन सुनकर गांधारी प्रसन्न होती हैं, किन्तु इसी बीच दुर्योधन की मृत्यु हो जाती है। यह समाचार सुनकर गांधारी मुर्छित हो जाती है। इस अंक के बीच में दिए गए कथा गायन में कौरव और वीरों का तर्पण करने लिए युद्ध भूमि की तरफ प्रस्थान करते हुए युयुत्सु, धृतराष्ट्र, संजय आदि का उल्लेख है। अर्जुन के बाणों से घायल अश्वस्थामा ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता है। कृष्ण के कहने पर अर्जुन अश्वस्थामा के ब्रह्मास्त्र को काटने के लिए अपने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करते हैं, किन्तु व्यास के कहने पर वे उसे वापस लौटा लेते हैं।

अश्वस्थामा का ब्रहमास्त्र उतरा के गर्भ पर गिरता है किन्तु कृष्ण शिशु को जीवित करने का आश्वासन देते हैं और अश्वस्थामा को शाप देते है कि वह पीप घावों से युक्त शरीर वाले दुर्गम स्थानों पर भटकता रहेगा। उधर गांधारी युद्ध भूमि में दुर्योधन के अस्थि-पंजर को देखकर कृष्ण को शाप देती है, तुम स्वयं अपने वंश को विनाश करके किसी साधारण व्याध के हाथ मारे जाओगे"

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 11, November 2016

पाँचवा अंक- एक क्रमिक हत्या

इस अंक में कथानायक पाण्डव-राज्य की स्थापना का उल्लेख है। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हो गया है। भीम के कटु वचनों से मर्माहत होकर धृतराष्ट्र तथा गांधारी वन चले जाते हैं। युयुत्सु अपमानित होकर भाले से आत्महत्या का प्रयास करता है, किन्तु सफल नहीं होता है। कुन्ती, गांधारी, धृतराष्ट्र भीषण दावाग्नि में भस्म हो जाते हैं।

समापान- प्रभु की मृत्यु

अंतिम अंक के बाद समापन होता है। इसका शीर्षक प्रभु की मृत्यु दिया गया है। झाड़ी के पीछे से निकलकर जरा नाम का व्याध कृष्ण के बाएँ पैर पर मृग का मुख समझकर बाण चला देता है। अश्वस्थामा प्रभु के शरीर से बहते हुए पीप से भरे नील रक्त को देख कर प्रसन्न होता है। उसे लगता है जैसे प्रभु ने अपने रक्त से उसकी ही पीड़ा को व्यक्त किया हो। उसके मन में प्रभु के प्रति आस्था का उदय होता है। व्याध के कथन से स्पष्ट होता है कि अंधे युग में प्रभु का अंश निष्क्रिय (संजय) आत्मघाती (युयुत्सु) और विगलित रहेगा तथा उनका दूसरा अंश मानव मन के उस मंगलकारी वक्त में निवास करेगा जो ध्वंसों पर नूतन निर्माण करेगा। नूतन सृजन, निर्भयता, साहस और मर्यादायुक्त आचरण में प्रभु बार-बार जीवित हो उठेंगे।[7]

“अँधा युग केवल महाभारत की कथा का एक मात्र अंश नहीं होकर, मानव के अंतर जगत को अभिव्यक्ति देते हुए युद्ध की विभीषिका दिखाने वाली रचना है”

सन् 1955 में प्रकाशित इस काव्य-नाटक में धर्मवीर भारती ने जिस प्रकार आधुनिक परिवेश में मूल्यों के संकट को व्यंजित किया है, उससे यह अत्यंत आश्चर्य होता है कि चार साल पहले तक रोमानी भाव-बोध वाला रचनाकार आधुनिक जीवन-परिवेश का एक सशक्त चित्र और उसमें मूल्यों के विघटन और निर्माण की रूपरेखा प्रस्तुत कर रहा है। एक पौराणिक मिथक, महाभारतकालीन कथानक, को द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर कालीन संदर्भ में रखकर तत्कालीन बुनियादी सवालों से जूझने एवं संवेदना के जटिलतर होते संबंधों को देखने का प्रयास किया गया है। किसी भी रचना की समय सापेक्षता ही उसे कालजयी बनाती है। रचना की प्रासंगिकता तब तक समाप्त नही होती हो सकती, जब तक मनुष्य विरोधी स्थितियां बनी रहती है। महाभारत के कथानक पर आधारित काव्य-नाटक ‘अंधायुग’ दो महायुद्धों से उत्पन्न मानवीय मूल्यों के विघटन की ऐसी ही वैश्विक समस्या है जिसके कारण मानवता, पाशविकता में बदल रही है और हम अंधे युग में जीने के लिए अभिशप्त हैं।

‘अंधायुग’ में महाभारत युद्ध की अंतिम संध्या के बाद के युद्धोतर परिणामों को कथानक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पौराणिक कथा होने के कारण महाभारत के पात्र युगों से हमारे सांस्कृतिक पटल पर छाये हुए हैं। अज्ञेय के अनुसार मिथक किसी भी जाति की सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा का महत्वपूर्ण अस्त्र है। किसी विशेष देशकाल में केवल ऐसे ही मिथक स्वीकृत होते हैं, जो जनमानस में रचे बसे हों। एक साहित्यकार से अपेक्षा की जाती है तो वह युगीन यथार्थ-बोध की कसौटी पर मिथकों की प्रासंगिकता पर अच्छी तरह से विचार कर ले, अन्यथा प्रयुक्त मिथक अर्थ की जगह अनर्थ की जड़ बन जाते हैं। भारती जी की चेतना महाभारतकालीन युद्धोत्तर परिणामों को बीसवीं सदी के विश्वयुद्धोत्तर परिणामों के समानधर्मा पाती है। इसलिए महाभारत का यह पौराणिक-मिथकीय संदर्भ, वर्तमान समय में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय, दोनों स्तरों पर, सांस्कृतिक संकटों एवं मानवीय अस्तित्व के संकटों को समेटता है। अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर विश्व युद्धों में हुए व्यापक नरसंहार एवं राष्ट्रीय धरातल पर विश्व-मानवता का संदेश देने वाले गाँधीवाद की तिलांजलि ने मानव अस्तित्व के सामने जो संकट उपस्थित किया, उसने धर्मवीर भारती को एक ऐसा

IJIRSET

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 11, November 2016

समानधर्मा कथानक चुनने को प्रेरित किया, जिससे मानवीय विघटन एवं सांस्कृतिक संकट का आख्यान प्रस्तुत किया जा सके। सुप्रसिद्ध नाट्य-समीक्षक नेमिचन्द्र जैन ने इस नाटक को विश्वयुद्ध और भारत-विभाजन दोनों के संदर्भ में देखा है- ''अंधायुग'' महाभारत संग्राम के बाद की स्थिति के अन्वेषण के माध्यम से दूसरे महायुद्ध के बाद की, बल्कि युद्ध मात्र से उत्पन्न होने वाली मूल्यहीनता, अमानवीयता, विकृति और सामूहिक तथा वैयक्तिक विघटन का उद्‌घाटन करता है। आनुषंगिक रूप से वह देश के विभाजन में निहित आंतरिक गृहकलह की परिणतियों की ओर भी इंगित करता है।''[8]

'अंधायुग' का रचना-संसार, निराशा, कुंठा, वेदना, पश्चाताप, ग्लानि, मूल्यहीनता एवं अंधापन से निर्मित संसार है जो युद्धोपरांत उपस्थित हुआ था-'युद्धोपरांत/यह अंधायुग अवतरित हुआ।' भारती जी के अनुसार इस युद्ध के लड़नेवाले सभी अंधे थे, पथभ्रष्ट थे, आत्महारा थे और अपनी अन्तर के गुफाओं के वासी थे। युद्ध एक ऐसी स्थिति है जहाँ लड़नेवाले से किसी सत्य, नैतिकता एवं मर्यादा-पालन की आशा नहीं की जा सकती है। हमारे पौराणिक मिथक या महाभारतकार व्यास भले ही यह घोषणा करें कि कौरवों का पक्ष अन्याय का और पाण्डवों का पक्ष न्याय का था, इसलिए सत्य एवं न्याय की रक्षा के लिए पाण्डवों द्वारा कुछ मूल्य-मर्यादाओं को तोड़ना जरूरी हो जाता है। परन्तु भारती जैसा आधुनिक संवेदना वाला रचनाकार सत्य और धर्म की विजय के नाम पर मूल्यों एवं मर्यादाओं के उलंघन की अनदेखी नहीं कर सकता है। व्यास एवं भारती की दृष्टि में यहीं फर्क है। वास्तव में, यह युगीन संवेदना का फर्क है। व्यास भले ही पाण्डवों के पक्ष को सत्य, न्याय एवं धर्म का पक्ष देखते हों, परन्तु भारती द्वारा यह संभव नहीं था कि द्वितीय विश्व युद्ध में फासिस्ट कौरवों के समक्ष मित्र राष्ट्रों के पक्ष को न्यायोचित ठहराये। ऐसा करके मित्र राष्ट्रों की साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी एवं अन्यायपूर्ण व्यापारिक नीतियों के पक्ष में वे अपने को खड़ा नहीं कर सकते थे। जो आलोचक ''दोनो पक्षों ने तोड़ी मर्यादा'' की तीखी आलोचना करते हैं वे वास्तव में महाभारत के मिथक और द्वितीय विश्वयुद्ध के परिवेश के मूलभूत अन्तर को समझ नहीं पाते हैं। भारती जी महाभारत के इस युद्ध के माध्यम से आधुनिक विश्वयुद्धों के परिणामस्वरूप मानवीय टे्रजडी की कथा रचते हैं। वे भक्ति-भाव से महाभारत की कथा की पुनर्रचना नहीं करते हैं। वास्तव में धर्मवीर भारती आधुनिक भाव-बोध की कसौटी पर ही महाभारत-युद्ध को देखते हैं। उन्होने युद्ध के बाद विसंस्कृतिकरण, निराश और पराजय से उपजी मानसिकता, रक्तपात, विध्वंस, कुरूपता, हिंसा, नृशंसता, हासोन्मुख मनोवृति आदि गिरते और ध्वस्त होते मानवीय मूल्यों को हमेशा अपनी दृष्टि में रखा है। कोई भी रचनाकार अपने युगीन परिवेश के परिप्रेक्ष्य में ही किसी ऐतिहासिक-पौराणिक तथ्यों या मिथकों को देखता है। जब वे कहते हैं कि कौरवों एवं पांडवों, दोनों पक्षों में विवेक हार गया, युग का अंधापन जीत गया, तो उनकी नजर में बीसवीं सदी में साम्राज्यवादी एवं उपनिवेशवादी हितों की रक्षा के लिए टकराते राष्ट्रों का अंधापन है। युद्धरत किसी भी राष्ट्र का पक्ष न्यायोचित नहीं था और जो राष्ट्र लोकतांत्रिक अधिकारों एवं स्वतंत्रता के नाम पर मित्र राष्ट्रों के पक्ष में खड़े हुए थे, वे भी भ्रम में थे। 'अंधायुग' में भारती जी ने यह दिखाया है कि युयुत्सु ने महाभारत युद्ध में सत्य और न्याय की रक्षा के लिए कौरव-पक्ष छोड़कर पांडव-पक्ष ग्रहण करने का विवेकपूर्ण निर्णय लिया था। उसने माना कि सत्य बड़ा है कौरव वंश से। परन्तु यह देखकर आहत हो जाता है कि पांडव भी सत्य के पक्षधर नहीं है। जिसे प्रभु जाना था, उसने भी युद्ध में जीत के लिए मर्यादा तोड़ी है। कृष्ण ने कुरुक्षेत्र के मैदान में घोषणा की थी कि जिधर मैं हूँ, उधर धर्म है, जिधर धर्म है, उधर जय है। युयुत्सु ने यहीं किया, पर युयुत्सु को क्या मिला? पांडव-पक्ष ग्रहण करने से न केवल उसके अन्तर में वितृष्णा पैदा हो जाती है, बल्कि अपनी मां द्वारा भी उसे उपेक्षा एवं घृणा मिलती है। युयुत्सु द्वारा सत्य का पक्षधर होने के भ्रम की भर्त्सना करते हुए गांधारी कहती है-''बेटा/भुजाएं ये तुम्हारी/पराक्रम भरी/थकी तो नहीं/अपने बंधुजनों का/वध करते-करते'' अपने को विसंगति स्थिति में पाकर युयुत्सु स्वयं को छला हुआ महसूस करता है, उसे लगता है कि ''अंतिम परिणति में/दोनों जर्जर करते है/पक्ष चाहे सत्य हो/अथवा असत्य का।''

यहां भारती जी की चिंता के केन्द्र में घातक हथियारों का जखीरा खड़ा करने वाले, उन हथियारों का व्यापार कर राष्ट्रों को आपस में लड़ाने का उपक्रम करने वाले, अपने स्वार्थों के लिए विश्व को युद्ध में झोंकने वाले, किसी भी कमजोर राष्ट्र, राज्य, जाति, धर्म एवं नस्ल की सम्प्रभुता एवं स्वतंत्रता का हनन करने वाले तथा लोकतंत्र, मानवाधिकार एवं निःशस्त्रीकरण की दिखावटी हिमायत करने वाले अगुवा राष्ट्र हैं जो समस्त मूल्यों, नियमों एवं नीतियों को अपने स्वार्थ की कसौटी पर परखते हैं।[7]

ऐसे विनाशकारी युद्ध में, चाहे महाभारत का हो या द्वितीय विश्वयुद्ध हो, जिसकी प्रतिबद्धता सत्य, न्याय, मानवता तथा लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रति है, वह अपने को छला हुआ महसूस करता है। चाहे वह युयुत्सु हो या अपने लोकतांत्रिक अधिकारों

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 11, November 2016

तथा सम्प्रभुता की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध राष्ट्र हो। युयुत्सु यह कहता है कि मैं उस पहिए की तरह हूँ जो पूरे युद्ध के दौरान रथ की गलत धुरी में लगा था और अब अपनी धुरी से उतर गया है। युयुत्सु की अनुभूति युद्ध में मानव-विवेक की पराजय की अनुभूति है। आज के समय में एक-एक करके सारे मूल्य टूटते और बदलते जा रहे है। इसने हमारा विश्वास तोड़ ही तोड़ डाला है । लोगों के जीने का एक बड़ा मानसिक सहारा उनसे छिनता जा रहा है । युयुत्सु की आत्महत्या उसी का परिणाम है। वह घृणा एवं अपमान के कड़वे घूँट पीकर आत्महत्या करने के लिए विवश होता है। उसका यह आत्माघात केवल एक व्यक्ति का आत्मघात नहीं था, बल्कि कृपाचार्य के शब्दों में-''यह आत्महत्या होगी प्रतिध्वनित/इस पूरी संस्कृति में/दर्शन में, धर्म में, कलाओं में, शासन-व्यवस्था में/आत्मघात होगा बस अंतिम लक्ष्य मानव का।'' अर्थात् युयुत्सु का आत्मघात संपूर्ण मानवीय संस्कृति, धर्म एवं मूल्यों का आत्मघात है। द्वितीय विश्व युद्ध में जो राष्ट्र लोकतंत्र एवं विश्व मानवता के नाम पर शामिल होते हैं वे भी युयुत्सु की तरह आहत होते हैं। उन्हें महसूस होता है कि युद्ध का समस्त आयोजन साम्राज्यवादी एवं व्यापारिक स्वार्थों के लिए किया गया था। लेकिन जबतक वे संभलते तबतक वे सदियों से संजोयी अपनी संस्कृति, कला, दर्शन, आदि से श्री हीन होकर पूर्णतः खोखले हो चुके थे। उनका यह सांस्कृतिक खोखलापन आत्मघात का ही प्रतीक है। भारती जी ने यहां सांस्कृतिक खोखलापन के माध्यम से युद्ध के औचित्य को चुनौती दी है और महाभारत में-जिसमें ऐसा कहा गया था कि धर्मयुद्ध का पालन किया गया है-कुटिल योजनाओं की झलक दिखलाई गई है।

धर्मवीर भारती युद्ध के स्वतंत्र एवं स्वयंचालित स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। युद्ध की प्रक्रिया की एक बार शुरूआत हो जाने के बाद सत्य, न्याय, धर्म, नीति, कर्तव्य आदि का प्रश्न ही अप्रासंगिक हो जाता है। युद्धरत पक्षों का एकमात्र उद्देश्य होता है किसी भी कीमत पर शत्रु का विनाश और युद्ध में विजय प्राप्त करना। अंधी और स्वार्थ में डूबी सत्ता धृतराष्ट्र बनने को बाध्य होती है। सत्य के ध्वजाधारक भी असत्य का सहारा लेने से नही चूकते हैं। युग की मर्यादाएं टूटने लगती हैं । मानव-अस्तित्व एवं मानव-मूल्यों का हनन अपने चरम पर पहुँच जाता है। लोग भविष्य के सपनों की भ्रूण हत्या करने में संकोच नहीं करते। मानवता के प्रति यह अंधापन कभी ब्रह्मास्त्र के द्वारा गर्भ नष्ट करता है तो कभी अणुबम गिराकर शहर की संपूर्ण आबादी का समूल नाश कर देता है।

सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि इस महायुद्ध में जिनके पास विवेक है, वे भी परिस्थितिवश अपने विवेक का इस्तेमाल नहीं कर पाते हैं। उनकी स्वातंत्र्य-चेतना या तो भोथरी पड़ जाती है या वे इसका इस्तेमाल अमर्यादित आचरण के लिए ही करते हैं। धर्मराज एवं कृष्ण जैसे चरित्र भी युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए अनीति का सहारा लेने से चूकते नहीं है। धृतराष्ट्र और गांधारी यह जानते हुए भी कि उनके पुत्र धर्म की तरफ से युद्ध नहीं कर रहे हैंए अपने पुत्रों की जीत की आस लगा रखे थे। गांधारी में विवेक तो है परन्तु ममता के कारण अपने विवेक का उपयोग नहीं कर पाती। प्रतिहिंसा के कारण गांधारी का विवेक इतना कुंद पड़ जाता है कि वह घायल दुर्योधन के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के बजाय न केवल अश्वत्थामा की वध-नीति का समर्थन करती है, बल्कि कृष्ण को शाप भी देती है। उसका विवेक मर्यादित आचरण से शून्य पड़ जाता है। यही स्थिति युधिष्ठिर की है। धर्मराज के अमर्यादित आचरण के परिणाम तो अत्यंत ही त्रसद है जिसका एहसास उन्हें निरर्थक विजय की प्राप्ति के बाद होता है। द्रोण जैसे महारथी पर नियंत्रण पाने के लिए सत्यवादी युधिष्ठिर ने अर्धसत्य का सहारा लिया, जिसके परिणामस्वरूप अश्वत्थामा में प्रतिशोध की भावना बलवती हो जाती है। उसकी समस्त कोमलता एवं मानवता, कठोरता एवं पशुता में बदल गई। भारती जी लिखते हैं- ''अश्वत्थामा समूचे महाभारत के सामने, समूची गीता के सामने, भारत की समूची जीवन-दर्शन परम्परा के सामने एक मुजस्सिम सवाल है-'यह क्यों'?''2 वह प्रतिशोध एवं हत्या की पैशाचिक मानसिकता से ग्रस्त हो जाता है। वह चित्कार कर उठता है-''वध मेरे लिए नहीं नीति है, वह है अब मनोग्रंथि।'' ऐसी हिंसक मनोग्रंथि से ग्रस्त हो जाने के बाद मानवता की कोई सार्थकता नहीं रह जाती है। अश्वत्थामा अविवेकपूर्ण ढंग से घोषणा करता है-'पक्ष में नहीं है जो मेरे शत्रु हैं'। उसकी बर्बरता की चरम परिणति तब होती है जब मानव जाति का समूल नाश करने वाले ब्रह्मास्त्र को उत्तरा के गर्भ पर फेंकता है। इस प्रकार न तो युधिष्ठिर के अर्ध-सत्य के पीछे व्यक्ति-स्वातं=य की चेतना का निर्णय था और न ही अश्वत्थामा का आचरण ही मर्यादित था। दोनों का निर्णय युद्ध की मानसिकता से परिचालित था। सभी ने अपने-आप को 'अन्य वस्तु' (जिसके होने की चेतना न हो) की तरह युद्ध की नियति पर छोड़ दिया था। युद्ध की ऐसी मनःस्थिति में लिया गया कोई भी निर्णय अंधी सामूहिकता का निर्णय होता है। ऐसे निर्णय लोकतांत्रिक मूल्यों एवं मानवाधिकारों के नाम पर युद्ध की अंधी दौड़ में शामिल राष्ट्रों के समक्ष एक गंभीर प्रश्नचिह्न है।[6]

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 11, November 2016

संजय की ट्रेजडी और भी मर्मान्तिक है। उसके पास दिव्य-दृष्टि है परन्तु वह तटस्थ द्रष्टा मात्र है। युद्ध की विनाशकारी स्थितियों के समक्ष उसकी चेतना निःशक्त हो जाती है। उसकी चेतना कचोटती है-''मुझ सा निरर्थक होगा कौन''। परिणामतः उसकी दिव्य-दृष्टि सम्पन्नता उसके लिए व्यर्थ हो जाती है। युद्ध के प्रति निराकार निषेध का कोई विशेष अर्थ नहीं रह जाता है। यह विश्लेषण खुद संजय का है जो निर्णय के उत्तरदायी क्षणों में भटक जाता है। वह आस्था और अनास्था के अंतर्द्वन्द्व से ग्रस्त हो जाता है। युद्ध के समाप्त होते ही यह दिव्य दृष्टि स्वतः समाप्त हो जाती है। युद्ध की विभीषिका कराते हुए वह अपने अस्तित्व का अर्थ खोता जाता है-
'मैं तो निष्क्रिय, निरपेक्ष सत्य
मार नही पाता हूं, बचा नही पाता हूं, कर्म से पृथक्
खोता जाता हूं, अर्थ अपने अस्तित्व का'

दूसरी ओर कृष्ण है जिनका व्यक्तित्व भी प्रश्नों के घेरे में है। 'अंधा युग' में कृष्ण की प्रत्यक्ष उपस्थिति नही है, लेकिन युद्ध में उनकी भूमिका विवादास्पद है। उनका आचरण भी युद्ध को विनाशकारी परिणामों की ओर ले जाता है। गांधारी उन्हें वंचक कहती है। बलराम 'कूटबुद्धि' कहते हैं। वे अपनी प्रभुता का दुरूपयोग करते हैं। यदि वे प्रभु हैं और यदि वे चाहते तो अप्रतिम योद्धाओं का छलपूर्ण वध नहीं हो पाता। परन्तु आधुनिक युग के रचनाकार भारती जी द्वारा यह संभव नहीं था कि वे कृष्ण को विष्णु के अवतार तथा धर्म के संस्थापक के रूप में 'प्रभु' माने। इसीलिए उन्होंने कृष्ण को केवल आस्था का केन्द्र नहीं माना है। भारती जी ने कृष्ण को परात्पर प्रभु के स्थान पर सहज मानव रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने विदुर से कहलवाया है कि

'आस्था तुम लेते हो/अनास्था लोगा कौन?'

भारती जी कृष्ण के प्रति अपनी आस्था को छोटी सी पगडण्डी मानते है-'जरा अलग यह छोटी सी/मेरी आस्था की पगडण्डी।' ऐसा कहकर भारती जी अपनी सृजनात्मक क्षमता के बल पर हत्या, षडयंत्र और युद्ध के अंधेपन के बीच कृष्ण के आदर्श रूप (विराट रूप) तथा वास्तविक रूप (युद्ध में भूमिका) के बीच समन्वय स्थापित करते हैं। यही कारण है कि युद्ध में विवादास्पद भूमिका तथा सबकी ईर्ष्या एवं आक्रोश के पात्र होते हुए भी कृष्ण जिन जीवन-मूल्यों को प्रस्तुत करते हैं, वे अनुकरणीय एवं काम्य हैं। भारती जब कृष्ण को 'प्रभु' कहते हैं तो उनके लिए 'प्रभु' का संबंध अनुकरणीय मानव-आदर्शों एवं जीवन-मूल्यों की समग्रता से है, जिससे नूतन मानवता का सर्जन संभव है। भारती जी ने 'पश्यन्ती' में लिखा है कि '''प्रभु' मानवीय मूल्यों की सम्रगता है''3 कृष्ण समस्त अच्छे-बुरे कार्यों को अपने भीतर समेटकर स्वीकार करते हैं-'अठारह दिनों के इस भीषण संग्राम में कोई नहीं, केवल मैं ही मरा हूँ करोड़ो बार।' 'अंधायुग' में भी वे कृष्ण को इसी रूप देखते हैं, विष्णु के अवतार के रूप में नहीं। यहीं कारण है कि अपने अमर्यादित आचरणों के लिए गांधारी से शापग्रस्त होकर भी पुत्र रूप में शाप को स्वीकार कर लेते हैं। यहीं नहीं, अर्जुन को अनासक्त भाव से युद्ध करने का उपदेश भले ही विनाशकारी स्थितियों को जन्म देता है परन्तु इसी उपदेश में मानव की पूर्व निर्धारित नियत्ति को बदल देने की क्षमता भी निहित हैं।[5]

युद्ध की विनाशकारी परिणतियों के संदर्भ में भारती जी मूल्य-विषयक आधार की समस्या से जूझने का प्रयास करते हैं - क्या मनुष्य का निर्णय या आचरण निर्णायक क्षणों में मूल्यों के आलोक में निर्धारित होते हैं या स्वतः चलित यंत्रवत मानवीय वृतियों से या परिस्थितियों से? युद्ध में अमर्यादित आचरण इस बात का प्रमाण है कि निर्णायक क्षणों में मानवीय मूल्य निरर्थक पड़ जाते हैं। मनुष्य के भीतर बैठा अंधा बर्बर पशु स्वतः स्फूर्त रूप में विवेक, नैतिकता एवं मानवता को लाँघ जाता है। गांधारी कहती है-''निर्णय के क्षण में विवेक एवं मर्यादा/व्यर्थ सिद्ध होते आए हैं सदा।'' लेकिन भारती जी इस स्वतःस्फूर्त बर्बरता या अंधी प्रवृतियों को मानवता का आधार नहीं मान सकते। वे मनुष्य की रचनात्मक क्षमता पर भरोसा जताते हैं और मनुष्य के मर्यादित आचरण को मानवता का आधार घोषित करते हैं। वे विदुर से कहलवाते हैं ''केवल स्वयं किया हुआ मर्यादित आचरण कवच है जो व्यक्ति को बचाता है'' और यदि आचरण मर्यादित हो तो मनुष्य की रचनात्मकता अंधी नहीं होगी। यहीं मनुष्य सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए अनासक्त भाव से इतिहास को चुनौती देने में सक्षम हो सकता है। भारती जी ने वृद्ध याचक के मुँह से कहलवाया है-''जब कोई भी मनुष्य/अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को/उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है/नियत्ति नहीं पूर्व निर्धारित/उसको हर क्षण मानव-निर्णय बनाता मिटाता है।'' भारती के मूल्य चिन्तन का यह सकारात्मक पक्ष है।

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 11, November 2016

धर्मवीर भारती की व्यक्ति-स्वातंत्र्य की चेतना के प्रति प्रतिबद्धता और इसके आधार विवेकपूर्ण निर्णय की हिमायत उन्हें अस्तित्ववादी चिंतकों के समीप खड़ा करती है। परन्तु व्यक्ति-स्वातंत्र्य के आधार पर आधुनिकता की चेतना के केन्द्र में शामिल किए गए अस्तित्ववादी चिंतकों से भी भारती जी सर्वथा अलग दिखाई देते हैं। अलग दिखाई देने का आधार है जीवन में आस्था रखने की उनकी दृष्टि। 'अंधायुग' के कृष्ण युद्ध के विध्वंसक परिणामों, टूटी हुई मर्यादा, स्खलित मूल्य एवं खंडित गरिमा के अवशेष पर पुनः जीवित होने, नूतन सर्जन करने तथा मानव सृष्टि के अस्तित्व में आने की बात करते हैं। भविष्य के निर्माण की इसी कल्पना से वे अस्तित्ववादी चिंतन के वर्तमान क्षण की कटु निराशा, अनास्था एवं वेदना से ऊपर उठ जाते हैं। यह आस्थापरक दृष्टि भारती के आधुनिक भाव-बोध को पूर्णता प्रदान करती है। 'अंधायुग' का अंतिम कथा-गायन इसी विश्वास की ओर संकेत करता है -

"पर एक तत्व है बीजरूप स्थित मन में
साहस में, स्वतंत्रता में, नूतन सर्जन में।"

यदि युद्ध का आयोजन मनुष्य की विकृति है तो उसका शमन करने की क्षमता भी मनुष्य में निहित है। यह संभावना ही मनुष्य की अपराजेय शक्ति में आस्था को पुनर्जीवित करती है। मनुष्य की सृजनात्मक क्षमता अपरिमित है जिनके प्रति आस्था रखकर गहन अंधेरे को भेदा जा सकता है। संपूर्ण आधुनिक साहित्यिक परिवेश में इस सृजन-क्षमता को ही शक्ति का मुख्य स्रोत मानकर मानव की जयगाथा का आख्यान किया गया है। नये साहित्य की यह मानवतावादी प्रकृति है।

आधुनिक भाव-बोध के कटघरे में भारती जी पारम्परिक मूल्यों का भी परीक्षण करते हैं। वे गीता के 'स्वधर्म' का मूल्यांकन करते हैं। 'स्वधर्म' का अर्थ है-अपने द्वारा निर्धारित दायित्वपूर्ण कर्म। स्वकर्म का यह सिद्धांत एक ओर भारती के विवेकपूर्ण निर्णय का समर्थन करता है तो दूसरी ओर उनके व्यक्ति-स्वातंत्र्य की चेतना को भी स्थापित करता है। भारती जी की स्वीकृति है कि यह स्वधर्म हर व्यक्ति को उसकी वैयक्तिक सार्थकता प्रदान करता है। इसी के द्वारा उसके स्वतंत्र अस्तित्व को नया सामाजिक अर्थ प्राप्त होता है।4

कुछ आलोचकों ने भारती जी की आस्थावादी दृष्टि को स्वस्थ दृष्टि नहीं माना है। डा- इन्द्रनाथ मदान के अनुसार "अंधायुग की यह आस्था, आधुनिकता को खंडित करती जान पड़ती है और यह रचनाकार की कमजोरी है।"यहाँ मदान जी स्वयं संशय की स्थिति में हैं। नामवर सिंह ने भी भारती के व्यक्ति-स्वातंत्र्य और आस्थावादी दृष्टि को अवसरवादी और बाहर से उधार लिया हुआ चिंतन कहा है और माना है कि भूत और भविष्य को अस्वीकार कर केवल वर्तमान के क्षण में जीवित रहने वाले के लिए वर्तमान भी भूत जैसा लगता है।6

मुक्तिबोध के अनुसार भारती ने नैतिक गिरावट एवं मूल्यों के स्खलन के कारणों को गहराई से तहकिकात नहीं किया है। उनके अनुसार "भारती सभ्यता की आलोचना तो करते हैं किन्तु समाजशास्त्री जिज्ञासा के अभाव का शिकार होकर।" इसलिए जिस मर्यादापूर्ण आचरण एवं दायित्व को भारती सभ्यता के अवलम्ब के रूप में प्रकट करते है उसके सामाजिक रूपान्तर के लिए ठोस वैज्ञानिक आधार का अभाव है। अतः "श्री भारती का आशात्मक-भविष्यवाद एक बहलावा है।"[4]

लेकिन उपर्युक्त आरोप तभी तर्कसंगत होते जब आधुनिक भाव-बोध का अर्थ जीवन की विकृतियों को दिखाना होता। अगर साहित्यकार का दायित्व सर्जनात्मक और मानवीय मूल्यों के प्रति है तो मानव मुक्ति के लिए या मानव के भविष्य के लिए आस्था का प्रश्न 'अंधायुग' को सामयिक परिस्थितियों में सार्थकता प्रदान करता है। अंधों के माध्यम से 'अंधायुग' ज्योति की कथा बन जाता है। भारती ने मूल्यों के स्खलन एवं नैतिक गिरावट को फैशन के धरातल से नहीं देखा है बल्कि इनके गहरे सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकार है। जिन आलोचकों को आस्था एवं विवेकपूर्ण निर्णय फैशन मात्र या आयातित लगता है, उनके सामने यह प्रश्नचिह्न खड़ा होता है कि क्या वे यथार्थ के नाम पर जीवन की विनाशकारी एवं भयानक स्थितियों के चित्रण को साहित्य का उद्देश्य मानते हैं? क्या इन स्थितियों से बाहर निकलने के लिए नूतन सर्जन की राह दिखाना साहित्य का उद्देश्य नहीं हैं? क्या नवीन मानवीय संस्कृति, जिसमें मनुष्य की गरिमा और अस्तित्व सुरक्षित हो, के निर्माण में साहित्य की कोई भूमिका नहीं होती है? अगर मानवता के प्रति साहित्यकार की भूमिका रचनात्मक होती है तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारती जी ने 'अंधायुग' में एक ओर मानवीय मूल्यों के नवनिर्माण के प्रति आस्था प्रकट की है तो दूसरी ओर आधुनिकता के फैशनों से अपनी रचनाशीलता को बचाया भी है। उन्होंने आधुनिक भाव-बिन्दुओं, समाज में घटित घटनाओं, मानव की नियति एवं अपनी अनुभूतियों का पौराणिक कथानक के साथ

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 11, November 2016

सुन्दर समन्वय 'अंधायुग' में किया है। इसमें कुत्सित एवं स्खलित मूल्यों एवं आदर्शों के उद्घाटन के साथ ही मानव समाज एवं संस्कृति के सुन्दर रूप की स्थापना का वैश्विक संदेश है।

परिणाम

अंधा युग, धर्मवीर भारती द्वारा रचित हिंदी काव्य नाटक है। इस गीतिनाट्य का प्रकाशन सन् 1955 ई. में हुआ था। इसका कथानक महाभारत युद्ध के अंतिम दिन पर आधारित है। इसमें युद्ध और उसके बाद की समस्याओं और मानवीय महत्वाकांक्षा को प्रस्तुत किया गया है। इसका कथानक महाभारत के अठारहवें दिन से लेकर श्रीकृष्ण की मृत्यु तक के क्षण पर आधारित है। इस गीतिनाट्य में विभिन्न पात्रों की योजना की गई है। जैसे- अश्वत्थामा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, कृतवर्मा, संजय, वृद्ध याचक, प्रहरी-1, व्यास, विदुर, युधिष्ठिर, कृपाचार्य, युयुत्सु, गूँगा भिखारी, प्रहरी-2, बलराम, कृष्ण इत्यादि। यह् नाटक चार दशक से भारत की प्रत्येक भाषा में मंचित हो रहा है। इब्राहीम अलकाजी, एम के रैना, रतन थियम, अरविन्द गौड़, राम गोपाल बजाज, मोहन महर्षि और कई अन्य भारतीय रंगमंच निर्देशको ने इसका मंचन किया है। इराक युद्ध के समय निर्देशक अरविन्द गौड़ ने आधुनिक अस्त्र-शस्त्र के साथ इसका मन्चन किया। इस गीतिनाट्य का आरंभ मंगलाचरण से होता है। यह अंकों में विभाजित कृति है। 'कौरव नगरी' इस कृति का प्रथम अंक है। इसके दूसरे अंक का प्रारंभ 'पशु का उदय' नामक अध्याय से होता है। 'अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य' इसका तीसरा अंक है। चौथे अंक का आरंभ 'गांधारी का शाप' से होता है। 'विजयःएक क्रमिक आत्महत्या' इसका पाँचवाँ अंक है। अंतिम अध्याय 'समापन' 'प्रभु की मृत्यु' के साथ ही इस नाट्य की समाप्ति होती है। इसे नए संदर्भ और कुछ नवीन अर्थों के साथ लिखा गया है। इसमें धर्मवीर भारती ने रंगमंच निर्देशको के लिए ढेर सारी संभावनाएँ छोड़ी हैं। कथानक की समकालीनता नाटक को नवीन व्याख्या और नए अर्थ देती है। नाट्य प्रस्तुति मे कल्पनाशील निर्देशक नए आयाम तलाश लेता है। इस नाटक में कृष्ण के चरित्र के नए आयाम और अश्वत्थामा का ताकतवर चरित्र है, जिसमें वर्तमान युवा की कुंठा और संघर्ष उभरकर सामने आते हैं।[3]

धर्मवीर भारती द्वारा रचित यह एक गीतिनाटिका है। इसमें मिथकीय आख्यान का पुनःसृजन किया गया है। कथा का आधार महाभारत है। कथा का संबंध अट्ठारह दिनों तक चले महाभारत युद्ध के अट्ठारहवें दिन की घटनाओं से है। महाभारत जो कि एक प्राचीन महाकाव्य है, उसके चरित्रों और घटनाओं को आधुनिक संदर्भ में पुनःसृजित किया गया है। कथाकार की प्रेरणा और परिप्रेक्ष्य आधुनिक है – भले ही कथानक प्राचीन हो। इसमें समकालीन राजनीतिक संदर्भ भी है।

मिथक' यूनानी शब्द 'मिथ' का हिन्दीकरण है। इसे दन्तकथा, पुराख्यान आदि के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। मिथक परिवर्तनशील नहीं होता। यह अतर्क्य रीति से ज्यों का त्यों स्वीकृत किया जाता है। अज्ञेय के अनुसार मिथक किसी भी जाति की सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा का महत्वपूर्ण अस्त्र है। 'मिथक' देश कालातीत होते हैं। किसी विशेष देशकाल में केवल ऐसे ही मिथक स्वीकृत होते हैं जो जनमानस में रचे बसे हों। जिसकी प्रासंगिकता लोगों के बीच जानी और पहचानी जाती हो। अन्यथा प्रयुक्त मिथक अर्थ की जगह अनर्थ की जड़ बन जा सकते हैं। इसलिए एक साहित्यकार से अपेक्षा की जाती है कि वह प्रयुक्त मिथक की प्रासंगिकता पर अच्छी तरह सोच-विचार करले कि मिथकों की प्रासंगिकता युग का यथार्थ बोध करा रही है या नहीं।

अंधायुग में मिथक या पौराणिक कथा उतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितनी कि नया युगबोध। यह कृति वर्तमान युग को संकेत करती है कि यह युग अंधायुग है। अंधा, यानी विवेक और बुद्धि से अंधे हैं। कर्तव्यहीनता, भ्रष्टाचार, बेईमानी, आत्महत्या, आदि के इस युग में जो शासक वर्ग है, वह इनसे अंधों के समान आंखें बंद कर बैठा है। लोगों के भावनाओं की हत्या हो रही है। इस नगर में स्वार्थ, लोभ, लालच के अनेक प्रकार के विवर हैं, अंतरगुफाएं हैं, गलियां हैं। इसके कारण लोगों का मन ही अंधा है। स्वार्थ, विवेकहीनता, कर्तव्यहीनता ने लोगों की आंखों पर पट्टियां बांध रखी है। भाईचारा समाप्त हो गया है, नौकरशाही, भाई-भतीजावाद और कर्त्तव्यविमुखता का बोलबाला है।

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 11, November 2016

कवि ने युद्ध के बाद संस्कृति के विसंस्कृतिकरण, निराशा और पराजय से उपजी मानसिकता, रक्तपात, विध्वंस, कुरूपता, हिंसा, नृशंसता, ह्रासोन्मुख मनोवृत्ति आदि गिरते और ध्वस्त होते मानव मूल्यों के हमेशा अपनी दृष्टि में रखा है। सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन किसी भी जाति और संस्कृति के लिए बहुत बड़ा खतरा होता है और वहीं ऐसे मिथक की ज़रूरत होती है जिसे विसंस्कृतिकरण के आक्रमण के विरोध में अस्त्र की तरह हाथ में उठाया जा सके। कवि शुरु में ही कहता है,

युद्धोपरांत

यह अंधायुग अवतरित हुआ

जिसमें स्थितियां, मनोवृत्तियां, आत्माएं सब विकृत हैं

एक बहुत पतली सी डोरी मर्यादा की

पर वह भी उलझी है दोनों पक्षों में

अंधायुग में तुलना की गई है महाभारत युग से। महाभारत में 18 दिनों के युद्ध हुआ था। यह घटनाक्रम 18वें दिन का है। कथानक अंतिम रात्रि की है। दुर्योधन की हत्या हो चुकी है। उसके बाद का जो युग है, वह अंधा युग है। द्रोह, पराजय, बदला, हतोत्साह, निराशा प्रजा में व्याप्त है। शासक वर्ग में हतोत्साह की भावना है। इस युद्ध में दोनों पक्षों ने नियमों का उल्लंघन किया। ग़लत निर्णय लिये गए। ग़लत कार्य किया गया। दूसरे विश्वयुद्ध का ध्वंस और तीसरे विश्वयुद्ध की संभावना का त्रास, दोनों मिलकर जिस मानसिकता का निर्माण करते हैं, 'अंधायुग' के शुरु के अंशों में उसी की अभिव्यक्ति है।[2]

इस रचना में सबसे महत्वपूर्ण बात है रचना में व्यक्त नया युगबोध। नए युगबोध के अनुसार सच और झूठ पर कोई निरपेक्ष या शाश्वत फैसला नहीं लिया जा सकता। आज के समय में एक-एक कर सारे मूल्य टूटते और बदलते जा रहे हैं। इसने हमारा विश्वास ही तोड़ डाला है। लोगों के जीने का एक बड़ा मनसिक सहारा उनसे छिन गया है। युयुत्सु की आत्महत्या उसी का परिणाम है। यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि मनुष्य चाहे सच का रास्ता चुने या झूठ का, दोनों का ही अंत दुखदायी होता है। सच का पक्ष लेकर युयुत्सु अपनों से भी अपमानित हुआ और तथाकथित सच के पक्ष में खड़े भीम के दुर्वचन भी उसे झेलने पड़े। उसने प्रजा की घृणा भी झेली। ... और युद्ध को जीतने वाला युधिष्ठिर भी सुखी नहीं है।

ऐसे भयानक महायुद्ध को

अर्द्धसत्य, रक्तपात, हिंसा से जीतकर

अपने को बिल्कुल हारा हुआ अनुभव कर

यह भी यातना ही है।

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 5, Issue 11, November 2016

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के राजनीतिक घटनाक्रम को इस गीति-नाट्य में मिथकीय कौरवों-पांडवों के संघर्ष में परिणत कर देखा गया है। जैसा मूल्यों का संकट आज दिखाई दे रहा है, वैसे ही संकट की कल्पना कथाकार महाभारत की स्थिति में भी देखता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद लिखा गया यह नाटक उस समय के युद्ध को प्रतीक के रूप में प्रयोग करता है।[1]

जब कृति का अन्त होता है तो कवि कहता है,

उस दिन जो अन्धा युग अवतरित हुआ जग पर

बीतता नहीं रह-रह कर दोहराता है

हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कहीं न कहीं

हर क्षण अंधियारा गहरा होता जाता है।

यह इस मिथकीय आख्यान का मर्मबिन्दु है। कवि ने इसे दूसरे विश्वयुद्ध के बाद मानव की नियति और उसकी स्थिति में देखा। महाभारत युग से आज तक हम उन्हीं मानसिक यंत्रणाओं, रक्तपात, हिंसा और व्यर्थता के बोध के बीच विध्वंसों के अवशेष पर खड़े हैं और कर रहे हैं इंतज़ार नई कोंपलों के फूटने का। अन्धायुग में कवि ने जो प्रश्न उठाए हैं उनकी प्रासंगिकता आज भी कायम हैं।

निष्कर्ष

संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार के सहयोग से यूनिक विकास संस्थान लखनऊ द्वारा वाल्मीकि रंगशाला में सेमिनार एवं धर्मवीर भारती जी की कालजई रचना अंधायुग का मंचन किया गया। सेमिनार में रवींद्र गंगवार, महेंद्र भीष्म, पायल सोनी, के. के. तिवारी, डॉ मानसी द्विवेदी, योगेन्द्र सचान आदि ने रंगमंच की सार्थकता एवं समाज पर पड़ने वाले प्रभाव व रंगमंच के विस्तार पर अपने-अपने विचार रखे। वहीं चन्द्रभाष सिंह द्वारा निर्देशित नाटक को संस्था भरत रंग के कलाकारों ने जीवंत बना दिया। नाटक में दिखाया गया कि जब-जब स्वार्थबस मर्यादा तोड़ी गई तब-तब महाविनाश हुआ है। नाटक में पौराणिक कथा के माध्यम से आधुनिक भाव बोध को स्थापित किया गया है। इस नाटक में अमर्यादित और अनैतिक आचरण का विरोध दिखाई देता है। नाटक में यह भी दिखाया गया है कि संभ्रांत वर्ग के व्यक्तियों की चुप्पी से पड़ने वाला प्रभाव कितना भयानक हो सकता है। अंधायुग नाटक कर्म योग का संदेश भी देता है, मानव भविष्य निर्धारित नहीं है, मानव अपने कर्मों से भविष्य को बदल सकता है। नाटक के अनुसार महासंग्राम के बाद विजय एक लंबा धीमा और तिल-तिल कर फलीभूत होने वाला आत्म घात है।[8]

संदर्भ

1- कसौटी, अंक-15, सन् 2003, पृ.सं.--288
2- धर्मवीर भारती की साहित्य साधना, सं--पुष्पा भारती, पृ.सं.- 703
3- धर्मवीर भारती ग्रंथावली भाग-4, पृ.सं.- 476
4- धर्मवीर भारती ग्रंथावली भाग-5, पृ.सं.- 266
5- आधुनिक और हिन्दी साहित्य-इन्द्रनाथ मदान, पृ.सं.- 20
6- इतिहास और आलोचना-नामवर सिंह, पृ.सं.- 68
7- धर्मवीर भारती की साहित्य-साधना-सं- पुष्पा भारती, पृ.सं.- 449
8- वहीं, पृ.सं.- 450